मुस्लिम नौजवानों के लिए दिली नसीहतें

अल्लामा यूसुफ़ अल-क़रज़ावी

अनुवादक

एस॰ कौसर लईक़

नज़रसानी

नसीम गाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।"

मुस्लिम नौजवानों के लिए दिली नसीहतें

रमज़ान 1401 हि॰ में मेरे जो लेख "अल-उम्मत" पत्रिका में 'इस्लामी बेदारी" के उनवान से छपे थे उनके ख़ातिमे पर मैंने दो बातों पर ख़ास तौर से ज़ोर दिया था।

पहली बात तो यह थी कि यह बेदारी एक फ़ितरी और सेहतमंद बेदारी है और यह फ़ितरत और अस्ल की ओर वापसी की हैसियत रखती है, और हमारे मुस्लिम मुल्कों में यह हैसियत सिर्फ़ इस्लाम ही को हासिल है। इस्लाम को मुस्लिम देशों से देश-निकाला देनेवालों ने चाहे जितनी कोशिश की हो या इस्लाम के बारे में लोगों को गुमराह करनेवालों ने जो कुछ भी किया हो, लेकिन यह हक़ीक़त है कि इस्लाम ही हमारे लिए अस्ल और बुनियाद की हैसियत रखता है, इसी से हमारी शुरुआत है और यही हमारा अंत है। सख़्त परेशानी और सख़्त दुश्वारी के मौक़ों पर जब रास्ते गड्ड-मड्ड हो जाते हैं, मायूसी का माहौल छा जाता है तो लोगों को दीन के अलावा और कहीं पनाह नहीं मिलती, वे दीन की ओर भागते हैं और उसी के साए में पनाह लेते हैं। उसी से वे ताक़त हासिल करके रूह को ताक़तवर बनाते हैं, उम्मीदों को ज़िन्दा रखते हैं और ज़िन्दगी की आरज़ू हासिल करते हैं, उसी से रास्ते की रौशनी और रौशन रास्ता हासिल करते हैं।

हमारे समाज ने समस्याओं के पश्चिम और पूरब से हासिल किए हुए हलों को आज़मा लिया लेकिन उसकी कोई आरज़ू पूरी नहीं हुई न इनसान का सुधार हुआ, न समाज को तरक़्क़ी मिली, न दीन की भलाई

हुई और न दुनिया का फ़ायदा हुआ। इन बाहर से लाए हुए हलों से शर्मिन्दगी भरी हार, परेशानी, दुश्वारी और बिखराव के अलावा और कुछ हासिल नहीं हुआ, आज भी उनकी निशानियाँ और चिन्ह आँखों के सामने हैं।

फिर ऐसी हालत में अगर मुस्लिम मुल्क़ों में इस्लामी हल की तरफ़ लौटने की आवाज़ बुलंद हो और आम लोगों की राय ज़िन्दगी के हर मैदान में शरीअत (इस्लामी धर्म-विधान) को लागू करने की माँग हो और नौजवान जिनके अन्दर जोश और जज़्बा होता है, जो सियासत (राजनीति) की नर्मी और नर्म सियासत पर यक़ीन नहीं रखते हैं, इस सिलसिले में अपना रोल अदा करने की कोशिश करें तो इस में ताज्जुब की कौन-सी बात है?

यहाँ एक और बात भी है, वह यह कि उन नौजवानों में जो शिद्दत और सख़्ती पाई जाती है उसका इलाज सख़्ती और कठोरता नहीं है और न धमकी से उसका मुक़ाबिला किया जा सकता है। सख़्ती से उनकी शिद्दत को और बढ़ावा मिलेगा, धमकी से उनकी ज़िद और बढ़ेगी। इस शिद्दत पसंदी (उग्रवादिता) का इलाज तोहमतें लगाकर और शक का माहौल बनाकर भी नहीं किया जा सकता है। यहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इन नौजवानो के इख़्लास (निष्ठा) और अल्लाह से ताल्लुक़ में शक रखता हो .... सभी लोगों की निगाह में ये सच्चे हैं और अल्लाह से उनका ताल्लुक़ सच्चाई की बुनियाद पर है।

इस शिद्दतपसंदी का इलाज उन लोगों से दूर होकर नहीं, बल्कि उनके क़रीब होकर किया जा सकता है। उनके विचारों और पक्ष को अच्छी तरह समझना होगा, उनके मुहर्रिक़ात (प्रेरकों) और नीयतों के बारे में अच्छी राय रखनी होगी। उस खाई को पाटना होगा जो उनके और समाज के बीच पैदा हो गई है और अच्छे ढंग से उनके साथ इल्मी (ज्ञानात्मक) बातचीत करनी होगी, ताकि हक़ीक़त वाज़ेह हो जाए और बात खुलकर सामने आजाए! शक और शंकाएँ दूर हो जाएँ और यह

मालूम हो जाए कि किन बातों पर इत्तिफ़ाक़ है और किन बातों में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है।

तामीरी गुफ़्तगू

इसी तामीरी गुफ़्तगू को सामने रख कर मैं नौजवानों के सामने ख़ुदा के वास्ते कुछ सिफ़ारिशें और नसीहतें पेश कर रहा हूँ। दीन नसीहत और भलाई चाहने का नाम है। और जैसाकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हमें तालीम दी है कि यह नसीहत और ख़ैरख़ाही अल्लाह, अल्लाह के रसूल, अल्लाह की किताब, मुसलमानों के पेशवाओं और आम मुसलमानों के लिए होनी चाहिए। मोमिन, मोमिन का आइना होता है और हक़ की नसीहत करना और सब्र की ताक़ीद करना दुनिया और आख़िरत के घाटे से नजात का ज़रीआ है।

इन नसीहतों से मेरा मक़सद यह है कि मैं राह में निशान लगा दूँ। ये निशान मंज़िल की तरफ़ हमारी रहनुमाई करेंगे। ठोकरों से बचाएँगे, सफ़र को दरमियान में ख़त्म न होने देंगे। मक़सद से इधर-उधर भटकने नहीं देंगे, और ख़ुद अपने नफ़्स और अपनी ज़ात को मंजिल और मक़सद बनाने की राह में रोक बन जाएंगे।

ख़ास चीज़ों और ख़ास लोगों का एहतिराम

नौजवानों के लिए मेरी सबसे पहली नसीहत यह है कि उन्हें किसी इल्मी तहक़ीक़ और महारत हासिल करने वालो का एहतिराम करना चाहिए। हर इल्म और फ़न (ज्ञान एवं कला) के कुछ आलिम और माहिर (विशेषज्ञ) होते हैं। जिस तरह यह सही नहीं है कि एक इंजीनियर डॉक्टरी के बारे में या एक डॉक्टर क़ानून के बारे में अपनी राय और फ़ैसला सुनाए, बल्कि इससे भी आगे अगर किसी डॉक्टर ने डॉक्टरी की किसी एक शाख़ में महारत हासिल की है तो उसे डॉक्टरी

के दूसरे मैदान में दख़ल देने का हक़ नहीं है। इसी तरह शरीअत के मामले में भी यह बात जायज़ नहीं कि जो चाहे दख़ल दे और दावा करे कि इस्लाम किसी गरोह की जागीर नहीं है। और दूसरे धर्मों की तरह इस्लाम में धर्म के पुरोहितों का कोई तबक़ा (वर्ग) ख़ास नहीं है।

हक़ीकत यही है कि इस्लाम में पुरोहितों या धर्म के ठेकेदारों का कोई गरोह नहीं होता, लेकिन यह बात भी हक़ है कि इस्लाम मज़हब के माहिरों को नहीं नकारता बल्कि उनके वुजूद को तस्लीम करता है। इन्हीं आलिमों की तरफ़ इशारा करते हुए क़ुरआन कहता है—

> "मगर ऐसा क्यों न हुआ कि इनकी आबादी के हर हिस्से में से कुछ लोग निकल कर आते और दीन की समझ पैदा करते और वापस जाकर अपने इलाक़े के लोगों को ख़बरदार करते ताकि वे (ग़ैर-इस्लामी रविश से) परहेज़ करते।" (क़ुरआन, 9:122)

क़ुरआन और नबी (सल्ल॰) की तालीम ने हमें यह बताया है कि जिन चीज़ों के बारे में हमें इल्म न हो उनके बारे में मुख़लिस और तजुर्बा रखनेवाले आलिमों से पूछना चाहिए।

> "तुम लोग अगर इल्म नहीं रखते तो जाननेवालों से पूछ लो।" (क़ुरआन, 21:7)

अल्लाह तआला का फ़रमान है —

> "हालाँकि अगर ये उसे रसूल (सल्ल॰) और अपनी जमाअत के ज़िम्मेदार लोगों तक पहुँचाएँ तो वह ऐसे लोगों के इल्म में आ जाए जो उनके बीच इस बात की सलाहियत (योग्यता) रखते हैं कि उससे सही नतीजा निकाल सकें।"
> (क़ुरआन, 4:83)

> "उसकी शान बस किसी जाननेवाले से पूछ लो।"
> (क़ुरआन, 25:59)

"हक़ीक़ते-हाल की ऐसी सही ख़बर तुम्हें एक जानकार के सिवा कोई नहीं दे सकता।" (क़ुरआन, 35:14)

एक सहाबी (रज़ि॰) जिनके सिर में ज़ख़्म था, उन्होंने अपने साथ के कुछ लोगों से पूछा कि उन्हें पाकी हासिल करने की ज़रूरत है, तो उस जख़्म की हालत में वे ग़ुस्ल करें या न करें? उन लोगों ने ज़ख़्म के बावजूद फ़तवा दिया कि ग़ुस्ल वाजिब है। चुनाँचे उन सहाबी (रज़ि॰) ने ग़ुस्ल कर लिया जिसकी वजह से उनकी मौत हो गई। जब नबी (सल्ल॰) को यह बात मालूम हुई तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह उन्हें तबाह करे, उन लोगों ने उसे मार डाला। अगर ये लोग मसला नहीं जानते थे तो जानने वालों से क्यों नहीं पूछा। नादानी का इलाज पूछना ही तो है।"

और यह देखकर तो मैं अन्देशा और ख़ौफ़ महसूस करने लगता हूँ कि बहुत ही नाज़ुक और ख़तरनाक मसलों और अहम मामलों में वे लोग फ़तवा देने और 'अहकाम' जारी करने की जुर्रत (दुस्साहस) करते हैं जिनके अन्दर फ़तवा देने की कोई सलाहियत नहीं होती। और कभी-कभी तो ये लोग गुज़रे हुए और मौजूद ज़्यादातर आलिमों की मुख़ालिफ़त करते हैं और उन्हें ख़ताकार और ज़ाहिल क़रार देने लगते हैं और अपने बारे में यह ग़ुमान करते हैं कि वे मुक़ल्लिद (यानी किसी इमाम या आलिम की पैरवी करने वाले) नहीं हैं। इज्तिहाद[1] करना उनका हक़ है। और इज्तिहाद का दरवाज़ा सभी के लिए खुला हुआ है। हालाँकि उन लोगों की यह बात सही है, लेकिन इज्तिहाद के लिए कुछ शर्तें हैं और ये शर्तें आम तौर पर उनमें से किसी के अन्दर नहीं पाई जाती हैं।

[1] जहाँ क़ुरआन और हदीस का साफ़ आदेश न हो वहाँ क़ुरआन और हदीस की अन्य शिक्षाओं की रौशनी में अपनी राय से उचित रास्ता निकालना। —अनुवादक

हमारे बुज़ुर्गों में तहक़ीक़ करनेवाले इस्लामी आलिमों ने अपने दौर के कुछ आलिमों पर इस लिए नुक्ता-चीनी की है कि वे काफ़ी ग़ौर-फ़िक्र और तहक़ीक़ के बग़ैर 'फ़तवा' देने में जल्दबाज़ी से काम लेते थे। चुनाँचे ऐसे लोगों के बारे में तहक़ीक़ करनेवाले आलिमों ने जो नुक्ताचीनी की है उसमें से एक यह है– "उनमें कुछ लोग ऐसे 'मसले' में 'फ़तवा' देते हैं कि अगर वह मसला हज़रत उमर (रज़ि॰) के सामने पेश किया जाता तो वे उसके हल के लिए उन सहाबा को जमा करके सलाह-मशविरा करते जो बद्र की जंग में शरीक थे।" इसी लिए कहा गया है कि "तुम में से 'फ़तवा' देने में जो ज़्यादा निडर है, वह जहन्नम की सज़ा पर ज़्यादा निडर होने का मुज़ाहरा (प्रदर्शन) करता है।"

ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के सामने जब कोई 'मसला' पेश किया जाता तो वे उस गहरे इल्म और समझ के बावजूद जिससे अल्लाह तआला ने उन बुज़ुर्गों को नवाज़ा था, आम सहाबा (रज़ि॰) और आलिम सहाबा (रज़ि॰) को इकट्ठा करते, उनसे मशविरा करते और उनकी रायों से रौशनी हासिल करते। इसी क़िस्म के इज्तिमाई फ़तवों से इस्लाम के पहले दौर में इज्मा को बढ़ावा मिला।

उन बुज़ुर्गों में कुछ ऐसे लोग भी थे, जो फ़तवा देने से बचा करते थे। ख़ुद जवाब देने के बजाए दूसरों के सुपुर्द कर देते या कहते कि मैं नहीं जानता। उक़बा-बिन-मुस्लिम (रह॰) कहते हैं कि मैं चौंतीस माह तक हज़रत इबने-उमर (रज़ि॰) के साथ रहा। ज़्यादातर मसलों में जो उन से पूछे जाते, वे जवाब देते, "मैं नहीं जानता।"

इब्ने-अबी-लैला कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथियों (रज़ि॰) में से एक सौ बीस अंसार साथियों (रज़ि॰) से मुझे मिलने का मौक़ा मिला है। उनमें से जब किसी से कोई 'मसला' पूछा जाता तो वे किसी दूसरे से मालूम करने के लिए कहते। दूसरा किसी और से मालूम करने के लिए कहता। यहाँ तक कि घूम-फिर कर वह वहीं पहुँच जाता, जहाँ सबसे पहले पूछा था। उनमें से जब किसी से कोई मसला पूछा

जाता था तो उसकी तमन्ना यही होती थी कि काश! उसका कोई भाई यह भारी बोझ बठा लेता।

हज़रत अता-बिन-अस-साहब (रह॰) कहते हैं– मैं ऐसे लोगों से मिला हूँ कि जब उनमें से किसी से कोई सवाल किया जाता तो वे जवाब देते थे, लेकिन उस दम उनके बदन पर कपकपाहट तारी रहती थी।

और जब हम ताबईन[1] (रह॰) को देखते हैं तो पाते हैं कि उस गरोह के सरदार और सबसे बड़े फ़क़ीह (इस्लामी धर्मशास्त्री) हज़रत सईद-बिन-अल मुसैइब (रह॰) जब कोई 'फ़तवा' देते थे तो यह ज़रूर कहते थे "ऐ अल्लाह! मुझे महफ़ूज़ रख और मुझसे लोगों को महफ़ूज़ रख।"

ताबईन (रह॰) के बाद हम इस्लाम के उन प्रतिष्ठित इमामों (पेशवाओं) को देखते हैं जिनके मसलक (मत) की पैरवी की जाती है। ये बुज़ुर्ग इमाम भी जिन सवालों के बारे में अच्छी तरह मालूमात नहीं रखते उनके बारे में "ला अद्‌री" (मैं नहीं जानता) कहने में उनकी अज़मत और बड़ाई रुकावट नहीं बनती थी। ये इमाम मालिक (रह॰) हैं। इस सिलसिले में उनका रवैया बहुत सख़्त था। वे कहते थे – "जिस किसी से मसला पूछा जाता है जवाब देने से पहले उसे चाहिए कि अपने आप को जन्नत और दोज़ख़ पर पेश करे और यह देखे कि आख़िरत में नजात (मुक्ति) कैसे होगी– फिर मसले का जवाब दे।"

इब्ने-क़ासिम कहते हैं कि मैंने इमाम मालिक (रह॰) को यह कहते सुना कि 10 साल से ज़्यादा मुद्दत से एक इस्लामी मसले पर ग़ौर-फ़िक्र कर रहा हूँ, लेकिन अभी तक सही राय पर नहीं पहुँच सका हूँ।

---

[1] ताबईन– 'ताबई' का बहुतवचन है। ताबई उस मुसलमान को कहा जाता है, जिसने किसी 'सहाबी' यानी नबी (सल्ल॰) के साथी को देखा हो या उनसे मिला हो।
—अनुवादक

इब्ने-मेहदी कहते हैं कि मैंने इमाम मालिक (रह.) को यह कहते सुना है कि कभी-कभी मेरे सामने एक मसला पेश किया जाता है और मैं उसी मसले में ग़ौर-फ़िक्र करते-करते पूरी रात गुज़ार देता हूँ।

मुसअब कहते हैं कि मेरे बाप ने एक मसले के बारे में मुझे इमाम मालिक (रह.) के पास भेजा और जो साहब मसला लेकर आए थे उन्हें भी साथ कर दिया ताकि वे इमाम मालिक (रह.) से बयान कर दें। इमाम मालिक (रह.) ने उनकी बात सुनी और कहा कि मैं उस मसले का जवाब नहीं दे सकता। "इस्लाम का गहरा इल्म रखने वाले से पूछिए।"

इब्ने-अबी हस्सान कहते हैं कि इमाम मालिक (रह.) से 22 मसले पूछे गए, इमाम मालिक उस मुद्दत में बार-बार "ला हौल वला क़ुव्वत इल्ला बिल्लाह" यानी मैं कोई ताक़त नहीं रखता अल्लाह के अतिरिक्त" पढ़ते रहे और सिर्फ़ दो मसलों का जवाब दिया।

मैं मुस्लिम नौजवानों को पढ़ने-लिखने से नहीं रोक रहा हूँ, इल्म का हासिल करना तो एक ज़िम्मेदारी है। माँ की गोद से मौत तक इसका जारी रखना मतलूब (अपेक्षित) है। मैं उनसे सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि पढ़ने-लिखने के बाद भी उन्हें माहिरीन-फ़न (विशेषज्ञों) की ज़रूरत पड़ेगी। इसलिए कि शरई या दीनी इल्म के लिए भी कुछ ज़रीए और वसायल (संसाधन) हैं, जिन्हें वे पूरी तरह हासिल नहीं कर सके हैं कुछ उसूल हैं, न उनको पूरी तरह जान सके हैं, न पूरी तरह उनसे आगाही हासिल कर सके। कुछ छोटे-छोटे मसले हैं और कुछ बड़े और बुनियादी मसले हैं, लेकिन उन नौजवानों के औक़ात और मसरूफ़ियतें उन्हें फ़ुरसत नहीं देतीं कि ये उनकी तरफ़ ध्यान दें। हर एक के लिए एक दिशा है और वह उसी की तरफ़ देख रहा है और जो जिस चीज़ के लिए पैदा किया गया है वही उसके लिए आसान बना दी गई है।

कालेजों में लिटरेचर, तिजारत, डॉक्टरी और इंजीनियरिंग की शिक्षा हासिल करने वाले कुछ छात्रों ने दीन और शरीअत में खास और नुमायाँ मक़ाम हासिल करने के लिए अपनी तालीम छोड़ दी। मैं उन छात्रों के इस रवैए को पसंद नहीं करता। ख़ास कर जबकि उन लोगों ने अपनी तालीम के कई मरहलों को अच्छी और नुमाया कामयाबी के साथ तय कर लिया था। क्या ये लोग इस बात को नहीं जानते हैं या उसे जानकर भुला दिया है कि इन उलूम (विद्याओं) में ख़ूबी और ऊँचा और नुमाया मक़ाम हासिल करना भी मुसलमानों के लिए 'फ़र्ज़-किफ़ाया'[1] की हैसियत रखता है। इन मैदानों में मुसलमानों और उनके विरोधियों के बीच बहुत सख़्त मुक़ाबला है। ऐसी हालत में अगर आदमी कोई नेक नीयत के साथ इन दुनियावी इल्मों (सांसारिक विद्याओं) को गहराई के साथ हासिल करता है तो उसे समझना चाहिए कि वह भी 'इबादत' और 'जिहाद' में लगा हुआ है।

जब मुहम्मद (सल्ल॰) को नबी बनाया गया तो सहाबा (रज़ि॰) तरह-तरह के कारोबारों से अपनी रोज़ी हासिल करते थे। जो लोग जिस जाइज़ धंधे में लगे हुए थे नबी (सल्ल॰) ने उनसे हटाया नहीं और न उनसे यह माँग की कि वे अपने रोज़गार को छोड़कर अपने-आपको दीन के इल्म या इस्लाम की दावत-व-तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) के लिए पूरी तरह फ़ारिग़ कर लें। अलबत्ता जिसको किसी मुहिम के लिए तलब किया जाता था तो उसके लिए ज़रूरी था कि वह अपने आपको उस मुहिम के लिए तैयार करे।

लेकिन अब जो बदलाव आया है मुझे अन्देशा है कि कहीं उसके पीछे हलक़ों और मजलिसों (सभाओं) में नुमायाँ होने की छिपी हुई ख़ाहिश न हो। कभी-कभी इस ख़ाहिश का एहसास भी नहीं होता

---

[1] वह क़र्ज़ और ज़िम्मेदारी जो एक या कुछ लोगों के अदा करने से सबकी ओर से अदा हो जाए। मिसाल के तौर पर किसी सभा में किसी के सलाम का जवाब एक आदमी दे दे तो सबकी ओर से हो जाता है।

लेकिन यह दिल की गहराइयों में मौजूद होती है। इसलिए ज़रूरत है कि बड़ी बारीकी से इसकी छानबीन की जाए। नफ़्स (मन) बुराइयों का हुक्म देता है और उस तक पहुँचने के लिए शैतान के रास्ते बहुत हैं और बारीक भी हैं– इसलिए तौफ़ीक़ उसी इनसान को मिलती है जो इन ख़तरनाक चौराहों पर रुक जाए और ख़ुद अपने नफ़्स का जायज़ा लें, अपने मुहर्रिकात (प्रेरकों) और इक़्दामात (कार्यवाइयों) का जायज़ा ले कि क्या यह सब कुछ दुनिया के लिए है या आख़िरत के लिए, अल्लाह की ख़ुशी के लिए है या लोगों की ख़ुशी के लिए? ताकि अपने नफ़्स को धोखे में डाले बग़ैर सीधी राह पर अपने रब की हिदायत और दलीलों के उजाले में आगे बढ़ता रहे–

"जो अल्लाह का दामन मज़बूती से थामेगा वह ज़रूर सीधा रास्ता पा लेगा।" (क़ुरआन, 3 : 101)

अल्लाह से डरनेवाले और बीच की राह अपनानेवाले रहनुमा

हालाँकि हर इल्म के कुछ आलिम और माहिर (विशेषज्ञ) होते हैं, लेकिन मुस्लिम नौजवानों के लिए यह मेरी नसीहत है कि वे 'दीन' (धर्म) की शिक्षा उन भरोसेमन्द मुस्लिम आलिमों से हासिल करें जिनके अन्दर इल्म की गहराई, तक़वा व परहेज़गारी और बीच की राह अपनाने की सलाहियत पाई जाती हो। इस्लामी इल्म की बुनियाद क़ुरआन और हदीस हैं, लेकिन जो आदमी क़ुरआन और हदीस को समझना चाहता है वह तफ़सीर लिखनेवालों (टीकाकारों) की तफ़सीरों से, शारहीन (भाष्यकारों) की शरहों (भाष्यों) से और फ़ुक़हा, (धर्मशास्त्रियों) की फ़िक़ह (धर्मशास्त्र) से बे परवाह नहीं हो सकता है। उन्हीं बुज़ुर्गों ने क़ुरआन और हदीस की ख़िदमत की है, उसूल बनाए हैं और इन उसूलों की रोशनी में फरुई (गोड़े) बातें पेश की हैं। और हमारे लिए एक बहुत बड़ा दीनी सरमाया छोड़ गए हैं इससे मुँह वही मोड़ सकता है जो नासमझ हो या अपने मन के फरेब में गिरफ्तार हो गया हो।

इस लिए जो आदमी क़ुरआन और हदीस के इल्म का दावेदार हो ओर उम्मत के आलिमों पर लानत-मलानत भी करता हो उस पर दीन की तालीम के सिलसिले में भरोसा नहीं किया जा सकता। इसी तरह जो आदमी क़ुरआन और हदीस की दलीलों को नज़र अन्दाज़ करके आलिमों और विभिन्न फ़िक़्ही मसलकों की किताबों से इल्म हासिल करता है तो वह दीन की अस्ल, बुनियाद और शरीअत के स्रोत और उद्गम को नज़र अन्दाज़ कर देता है।

कुछ आलिम ऐसे भी पाए जाते हैं जो इस्लामी शिक्षाओं की कुछ शाखाओं में माहिर की हैसियत रखते हैं। मिसाल के तौर पर, इतिहास, फ़लसफ़ा (दर्शन), तसव्वुफ़। लेकिन उनका ताल्लुक़ क़ुरआन और हदीस से सीधे तौर पर नहीं होता तो ऐसे आलिमों से उनके ख़ास फ़न (ज्ञान) से फ़ायदा उठाया जा सकता है। लेकिन न ये फ़तवा देने के क़ाबिल हैं और न उनसे दीन (इस्लाम) का इल्म हासिल किया जा सकता है।

इसी तरह उनमें कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो अपनी बातचीत और तक़रीर में जादू जगाते हैं। आम लोगों को मुतास्सिर करने और दिल के तारों को छेड़ने की अच्छी सलाहियत रखते हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि वे इल्मी तहक़ीक़ के मैदान के भी वीर और माहिर हैं। ये तो वे लोग हैं जो खरे और खोटे को, असल और नक़ल को, सच्चाई और ख़ुराफ़ात को गड्ड-मड्ड कर देते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है वे मसले को समझ नहीं पाते और बग़ैर जानकारी के फ़तवा दे देते हैं। ख़ुद भी गुमराह होते हैं और दूसरों को भी गुमराह करते हैं। इसी तरह कौन-सी बात किस दर्जे की है यह दर्जा तय करने का सवाल भी उनके दिमाग़ में गड्ड-मड्ड होकर रह जाता है। इसी के नतीजे में ये छोटी चीज़ों को बड़ी और बड़ी चीज़ों को छोटी, हक़ीर (तुच्छ) को अज़ीम (महान) और अज़ीम (महान) को हक़ीर (तुच्छ) बना देते हैं और उनके अच्छे अन्दाज़ और जादुई बातों से उनका

असर क़बूल करनेवाले यह यक़ीन करने लगते हैं कि ये तो उन लोगों में से हैं जिनसे इल्म और मसलों के हल हासिल किए जा सकते हैं। हालाँकि यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है कि वअज़ (उपदेश) और ख़िताबत (संबोधन) एक फ़न (कला) है और फ़िक़्ह और तहक़ीक़ दूसरा फ़न है और हर वह इनसान जो उनमें से किसी एक फ़न में महारत रखता है, ज़रूरी नहीं है कि वह दूसरे फ़न का भी माहिर हो।

फिर यह भी कि दीन का इल्म उन्हीं आलिमों से हासिल करना चाहिए जो बा-अमल हों और इसी को हमने तक़वा नाम दिया है, जिसकी बुनियाद अल्लाह का डर है जो हक़ीक़ी इल्म का फल है।

अल्लाह तआला का फ़रमान है—

"हक़ीक़त यह है कि अल्लाह के बन्दों में से सिर्फ़ इल्म रखनेवाले ही लोग उससे डरते हैं।" (क़ुरआन, 35:28)

यह तक़वा और ख़ुदा का डर ही वह चीज़ है जो आलिम को रोक देती है कि वह अल्लाह के नाम से कोई बात बिना इल्म के कहे या अपने इल्म को किसी निज़ाम या सुल्तान की ख़िदमत में लगाकर अपनी आख़िरत को दूसरों की दुनिया के लिए बेच दे।

इस दौर में जिन लोगों से दीन का इल्म हासिल करना चाहिए उनके लिए तीसरी लाज़मी ख़ूबी 'एतिदाल (बीच की राह) है और यह एतिदाल दीने-इस्लाम की एक नुमायाँ ख़ूबी है। हमारा दौर भी अजीब आज़माइश का दौर है। इस दौर में इल्म से ताल्लुक़ रखनेवाले लोग आपस में मुक़ाबला करनेवाले दो गिरोहों में बटे हुए हैं। कुछ लोगों में इफ़रात-गुलू (हद से बढ़ जाने) का रुझान पाया जाता है तो कुछ लोगों के अंदर तफ़रीत (हद से नीचे रह जाने) और दीन के हुक्मों के बारे में ढील का रुझान पाया जाता है। इसी लिए हसन बसरी (रह.) का कहना है कि दीन में हद से आगे बढ़ जानेवालों और दीन से बचने वालों की वजह से दीन ख़त्म हो जाता है। चुनाँचे उनमें ऐसे लोग पाए

जाते हैं जिनके लिए कुछ मुशकिल नहीं कि लोगों पर हर चीज़ को हराम ठहरा दें और उनके मुक़ाबले में कुछ ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो लोगों के लिए हर चीज़ मुबाह (वैध) और जाइज़ बना देते हैं। उनमें वे लोग भी पाए जाते हैं जो किसी तयशुदा फ़िक़ही मज़हब के मानने को वाजिब ठहरा देते हैं और 'इज्तिहाद' के दरवाज़े को बन्द कर देते हैं। दूसरी तरफ़ वे लोग पाए जाते हैं जो तमाम फ़िक़ही मसलकों पर ताने मारते और नाक-भौं चढ़ाते हैं, उनकी कोशिशों और 'इज्तिहादों' को दीवार पर फेंक मारते हैं।

इन्हीं लोगों में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो ज़ाहिरी नुसूस (क़ुरआन की साफ़ और वाज़ेह आयतों) ही को अपनाते हैं, लेकिन न मक़सद पर नज़र डालते हैं और न क़ायदे-क़ानून का ख़्याल रखते हैं, इनके मुक़ाबिले में वे तावीलपसंद हैं जो क़ुरआन के वाज़ेह हुक्मों को आटे की लोई बना देते हैं कि जो मानी और मज़मून (विषय) चाहिए इससे ढाल लीजिए।

हालाँकि आलिमों की जो क़िस्म मतलूब है और जिस पर भरोसा किया जा सकता है वह क़िस्म (गरोह) वह है जो ग़ुलू (अति) और आज़ादाना रवैया अपनाने के मुक़ाबिले में बीच की राह अपनाती हो और उसके अन्दर संतुलन पाया जाता है। जिसकी अक़्ल फ़क़ीहों (धर्म शास्त्रियों) जैसी और दिल मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) जैसा हो और इस्लामी शिक्षाओं की रौशनी में अमली ज़िन्दगी में पाए जानेवाले बिगाड़ को दुरुस्त कर सकता हो, और यह भी कि जो यह फ़र्क़ कर सके कि ख़ास लोग क्या उम्मीद रखते हैं, क्या चाहते हैं और आम लोग किन मुश्किलों से दोचार हैं, और यह भी वह जानता हो कि इख़्तियार और ख़ुशहाली के अहकाम (आदेश) और हैं और ज़रूरत के अहकाम और आसान तलबी उसे इतना आगे न बढ़ा दे कि वह हलाल और हराम के बीच पड़े हुए परदों ही को ख़त्म कर दे और न एहतियात के नाम पर उसे

अल्लाह के बन्दों को सख़्तियों और दुश्वारियों में डालना चाहिए– हज़रत सुफ़ियान सौरी (रह.) को हदीस, फ़िक़्ह (इस्लामी धर्मशास्त्र) और तक़वा में इमामत (अगुआई) का मर्तबा हासिल है, अल्लाह की उन पर रहमत हो, वे कहते हैं सिक़ा, यानी भरोसे मन्द आलिमों की तरफ़ से मिलनेवाली छूट इल्म है। अब रही बात शिद्दत पसन्दी की तो इसके माहिर तो सभी हैं।

मुश्किलें नहीं आसानियाँ

मुस्लिम नौजवानों के लिए मेरी तीसरी नसीहत यह है कि उन्हें ग़ुलू (अतिवादिता) और सख़्ती से अपने आप को अलग कर लेना चाहिए। एतिदाल (संतुलन) और नर्मी के पहलू को अपनाना चाहिए, ख़ासकर आम लोगों के सिलसिले में जो उन चीज़ों को सहन नहीं कर सकते जिन्हें ख़ास और परहेज़गार लोग सहन कर लेते हैं। इसमें कोई हरज नहीं है कि एक मुसलमान किसी एक मसले में या सभी मसलों में अपने लिए वह पहलू अपनाए जिसमें ज़्यादा एहतियात और सलामती पाई जाती है, लेकिन अगर वह हमेशा-हमेशा के लिए यही 'ज़्यादा एहतियात' ही का रास्ता अपनाए और आसानी की राह बिल्कुल छोड़ दे तो दीन एहतियाती मुश्किलों का मज्मुआ (संग्रह) बनकर रह जाएगा! जिसमें सिर्फ़ शिद्दत और सख़्ती ही पाई जाएगी। हालाँकि अल्लाह अपने बंदों के लिए कुशादगी और आसानी चाहता है।

जो लोग किताब और सुन्नत की स्पष्ट बातों, नबी (सल्ल.) की सीरत (जीवनी) और सहाबा (रज़ि.) की ज़िन्दगी पर निगाह डालेंगे, वे यह जान लेंगे कि ये चीज़ें आसानी की तरफ़ बुलाती हैं। मुश्किलों को दूर करने की दावत देती हैं, ये चाहती हैं कि अल्लाह के बन्दों पर सख़्ती और शिद्दतपसंदी का रवैया अपनाने से दूर रहा जाए।

रोज़े के हुक्मों को बयान करने के बाद क़ुरआन कहता है–

"अल्लाह तुम्हारे साथ नर्मी करना चाहता है, सख़्ती करना नहीं चाहता।" (क़ुरआन, 2:185)

तहारत और पाकी के बयान के सिलसिले में अल्लाह कहता है—

"अल्लाह तुम पर ज़िन्दगी तंग नहीं करना चाहता।"

(क़ुरआन, 5:6)

निकाह के हुक्मों के सिलसिले में नाज़िल होनेवाली आयतों के आख़िर में अल्लाह ने फ़रमाया—

"अल्लाह तुम पर से पाबंदियो को हलका करना चाहता है, क्योंकि इनसान कमज़ोर पैदा किया गया है।" (क़ुरआन, 4:28)

'क़िसास' के सिलसिले में माफ़ी और समझौते की इजाज़त देते हुए अल्लाह ने कहा—

"यह तुम्हारे रब की तरफ़ से नर्मी और रहमत है।"

(क़ुरआन, 2:178)

अब रही बात हदीसों की तो इस सिलसिले में हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.), हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि.) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से जो रिवायतें हम पहले नक़ल (बयान) कर चुके हैं, वे काफ़ी हैं। हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.) का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया – "दीन में ग़ुलू (अतिवादिता) से बचो तुम से पहले के लोग दीन में ग़ुलू करने की वजह से तबाह हो गए।"

यह हदीस सही सनदों और प्रमाणों के साथ इमाम अहमद, नसई, इब्ने-माज़ा और अल-हाकिम ने रिवायत की है।

इमाम मुस्लिम (रह.) ने हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि.) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा—

"(ताक़त और सलाहियत से बढ़कर) हद से ज़्यादा ग़ुलू करनेवाले हलाक़ हो गए। यह बात आप (सल्ल.) ने तीन बार फ़रमाई और इसका ताल्लुक़ क़ौलो-अमल (कथनी-करनी) और राय तीनों से है।

इमाम बुख़ारी (रह.) ने हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से रिवायत की है कि एक देहाती ने एक बार मस्जिदे-नबवी में पेशाब कर दिया। लोग उसकी तरफ़ उसे रोकने के लिए बढ़ ही रहे थे कि आप (सल्ल.) ने हुक्म दिया—

"उसे छोड़ दो और एक डोल पानी लाकर बहा दो, तुम्हें आसानी पैदा करने के लिए उठाया गया है, सख़्ती के लिए नहीं।"

नबी (सल्ल.) का यह तरीक़ा था कि जब दो बातों में से किसी एक को चुनने का आप (सल्ल.) को इख़्तियार दिया जाता तो आप (सल्ल.) उसी को चुनते जिसमें ज़्यादा आसानी होती, जबकि वह गुनाह न हो। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

जब लोगों ने नबी (सल्ल.) से हज़रत मआज़ (रज़ि.) की शिकायत की कि वे नमाज़ की इमामत के वक़्त क़ुरआन देर तक पढ़ते हैं, तो आप (सल्ल.) ने फ़रमाया—

मुआज़ (रज़ि.) तुम लोगों को फ़ितने में डालते हो। यह बात नबी (सल्ल.) ने तीन बार दुहराई और इसका मतलब यह है कि लोगों पर सख़्ती करना और हमेशा उनसे उस सख़्ती पर खरा उतरने की माँग करना उनके लिए फ़ितने का कारण बन जाता है।

अगर एक शख़्स अपने-आपको कामिल और पूरा बनाने की चाह में अपने ऊपर सख़्ती करता है तो उसके लिए यह जायज़ नहीं है कि आम लोगों पर भी सख़्ती करे। इस तरह वह अनजाने तौर पर उनको दीन से फेर देगा। इसी लिए जब नबी (सल्ल.) अकेले नमाज़ पढ़ते थे तो आप (सल्ल.) की नमाज़ सबसे लम्बी नमाज़ होती थी। इसी सिलसिले में आप (सल्ल.) ने फ़रमाया —

"जब तुम में से कोई इमाम हो तो उसे हलकी नमाज़ पढ़ानी चाहिए। इसलिए कि पीछे नमाज़ पढ़नेवालों (मुक़्तदियों) में कमज़ोर, बीमार और बूढ़े लोग होते हैं। और जब तुम में से कोई अकेला नमाज़ पढ़े तो वह नमाज़ को जितनी लम्बी करना चाहे करे।" (हदीस : बुख़ारी मुस्लिम)

हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया– "मैं नमाज़ के लिए खड़ा होता हूँ और चाहता हूँ कि नमाज़ को लम्बी करूँ कि बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई देती है तो मैं नमाज़ को हलकी कर देता हूँ कि कहीं उसकी माँ पर भारी न हो।"

इमाम मुस्लिम (रह.) ने अपनी किताब 'सहीह मुस्लिम' में हल्का करने की सूरत यह बयान की है कि नबी (सल्ल.) ऐसे मौक़ों पर छोटी सूरतें पढ़ते थे।

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने मुहब्बत और शफ़्क़त की वजह से लोगों को लगातार रोज़ा रखने से मना किया। लोगों ने कहा, लेकिन आप (सल्ल.) तो बिना नाग़ा किए लगातार रोज़े रखते हैं। आप (सल्ल.) ने जवाब दिया, लेकिन मैं (इस मामले में) तुम लोगों की तरह नहीं हूँ। मेरा रब (पालनहार) मुझे खिलाता-पिलाता है।

हालाँकि हर ज़माने में आसानी की माँग मतलूब रही है लेकिन हमारे इस दौर में तो यह और ज़्यादा ज़रूरी और मतलूब (अपेक्षित) हो गई है। आज "दीन" का रिश्ता कमज़ोर हो चुका है और यक़ीन में पुख़्तगी और मज़बूती बाक़ी नहीं रही। लोगों पर माद्दी (भौतिक) ज़िन्दगी का ग़लबा हो चुका है – बहुत से हराम काम आम फ़ितने का इस तरह रूप धारण कर चुके हैं, मानो कि वे ज़िन्दगी की बुनियाद हैं और उनके अलावा जो कुछ है वे सब बेबुनियाद हैं। आज दीन से जुड़ा रहना

अंगारों को पकड़ने की तरह है। ये सारी चीज़ें आसानी और नर्मी का तक़ाज़ा करती हैं। इसी लिए फ़ुक़हा (इस्लामी धर्म-शास्त्रियों) ने कहा है— मशक़्क़त आसानी को लाती है, मामलों की तंगी कुशादगी की माँग करती है और फितनों और आज़माइशों में आमलोगों का पड़ जाना इस बात का सबब होता है कि उनसे नर्मी और माफ़ी का मामला किया जाए।

अच्छाई और समझदारी की राह

दीनदार मुस्लिम नौजवानों को मेरी चौथी नसीहत यह है कि उन्हें दीन की तब्लीग़ और मुख़ालिफ़ लोगों के साथ बहस-मुबाहिसे में वह मार्ग अपनाना चाहिए जिसकी निशानदही क़ुरआन-पाक ने की है और जिसे अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को मुख़ातब करके सूरा नह्ल की आख़िरी आयतों में बयान किया गया है ताकि हम नबी (सल्ल.) के बाद नबी (सल्ल.) की पाक ज़िन्दगी से हिदायत हासिल करते रहें।

> "ऐ नबी! अपने पालनहार रब के रास्ते की तरफ़ लोगों को बुलाओ हिकमत और अच्छी नसीहत के साथ और लोगों से बहस करो ऐसे ढंग से जो सबसे अच्छा हो।"
>
> (क़ुरआन, 16 : 125)

जो शख़्स क़ुरआन की आयतों में ग़ौरे-फ़िक्र से काम लेगा वह इस हक़ीक़त को पा लेगा कि बहस-मुबाहिसे के लिए सिर्फ़ अच्छे तरीक़े को अपनाने ही को काफ़ी नहीं समझा गया है, बल्कि आदेश है कि इसके लिए ज़्यादा अच्छा तरीक़ा अपनाया जाए। इसलिए अगर यहाँ बातचीत और गुफ़्तगू के लिए दो तरीक़े मौजूद हों — एक अच्छा और दूसरा उससे भी ज़्यादा अच्छा तो एक मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि वह बहस और बातचीत के लिए ज़्यादा अच्छे तरीक़े को अपनाए, जिसे दूसरे शब्दों में "लफ़्ज़े अहसन" कहा गया है। यह ज़्यादा बेहतर तरीक़ा फिरे

हुए दिलों को भी मोह लेता है और लोगों में एकता और अपनेपन का माहौल पैदा करता है।

किसी तरीक़े का सबसे अच्छा तरीक़ा होने के लिए यह ज़रूरी है कि बहसो-मुबाहिसा और बातचीत के दौरान जिन बातों पर इत्तिफ़ाक़ और सहमति हो उसे ज़ेहन में रखा जाए और फिर इख़्तिलाफ़ी (मतभेद वाली) बातों पर बातचीत की जाए, हो सकता है कि इन इख़्तिलाफ़ी बातों में भी इत्तिफ़ाक़ की राह निकल आए। अल्लाह का फ़रमान है—

> "और किताबवालों से बहस न करो, लेकिन ऐसे तरीक़े से जो सबसे अच्छा हो— सिवाए उन लोगों के जो उनमें से ज़ालिम हों— और उनसे कहो कि हम 'ईमान' लाए हैं उस चीज़ पर भी जो हमारी तरफ़ भेजी गई है और उस चीज़ पर भी जो तुम्हारी तरफ़ भेजी गई थी। हमारा ख़ुदा (प्रभु) और तुम्हारा ख़ुदा एक ही है और हम उसी के फ़रमाँबरदार हैं।" (क़ुरआन, 29 : 46)

अब रहीं इख़्तिलाफ़ी (मतभेद वाली) बातें तो इसका फ़ैसला तो 'क़ियामत' के दिन अल्लाह ही करेगा।

> "और वे तुम से झगड़ें तो कह दो कि जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह को अच्छी तरह मालूम है। अल्लाह क़ियामत के दिन उन सब बातों का फ़ैसला कर देगा जिनमें तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे हो।"

जब ग़ैर-मुस्लिमों के साथ बहस-मुबाहिसे में एक मुसलमान का यह तरीक़ा होता है तो मुसलमानों के साथ कैसा तरीक़ा अपनाना चाहिए, जबकि दोनों का अक़ीदा एक है, और दोनों के अन्दर दीनी-उख़ूवत और मुहब्बत का रिश्ता पाया जाता है। कुछ भाई हक़ के एलान और ज़बान और बयान की सख़्ती को ख़लत-मलत कर देते हैं। हालाँकि ये दोनों चीज़ें एक दूसरे के लिए लाज़िमो-मल्ज़ूम नहीं हैं कि

हक़ बात कहनी हो तो लाज़िमी तौर पर सख़्त ज़बान ही में कही जाए। समझदार मुबल्लिग़ (प्रचारक) वही है जो अपनी पूरी दावत को दूसरों तक नरमी से पहुँचा दे। तजर्बे से भी यही मालूम होता है कि ज़बान और बयान की सख़्ती से अच्छी बातें भी बेकार हो जाती हैं। इसी लिए कहा गया है कि जो लोगों को नेकी और भलाई का हुक्म दे तो चाहिए कि उसका हुक्म देने का तरीक़ा भी अच्छा हो।

इमाम ग़ज़ाली (रह.) ने अपनी किताब "अहयाउ-उलूमिद्दीन" में लिखा है कि भलाइयों का हुक्म और बुराइयों से रोकने का काम उसी को करना चाहिए जिसके अन्दर नर्मी, बुर्दबारी (सहनशीलता) और दीन की समझ-बूझ पाई जाती हो।

इसी सिलसिले में इमाम ग़ज़ाली (रह.) ने एक वाक़िआ नक़ल किया है कि एक आदमी भलाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने का काम करने के लिए अब्बासी ख़लीफ़ा 'मामून' के पास गया और फिर तीखे और तेज़ लहजे में बात की और इसका ख़याल नहीं रखा कि हर जगह के लिए बात का एक अन्दाज़ और तरीक़ा होता है, और वही उस जगह के लिए मुनासिब होता है। लेकिन मामून समझदार था, उसने कहा, अरे भाई यह क्या है, थोड़ा नरमी से काम लो। अल्लाह ने उस शख़्स को भेजा था जो आप से ज़्यादा बेहतर था और उस शख़्स के पास भेजा था जो मुझ से ज़्यादा बुरा था, लेकिन इसके बावजूद अल्लाह ने नर्म अन्दाज़ अपनाने का हुक्म दिया था। अल्लाह ने हज़रत मूसा (अलै.) और हज़रत हारून (अलै.) को फ़िरऔन के पास भेजा था। हज़रत मूसा (अलै.) और हज़रत हारून (अलै.) को इन लफ़्ज़ों में नसीहत की—

> "जाओ तुम दोनों फ़िरऔन के पास कि वह सरकश हो गया है। उससे नर्मी के साथ बात करना, शायद कि वह नसीहत क़बूल कर ले या डर जाए।" (क़ुरआन, 20:43, 44)

मामून ने उस शख़्स को चुप कर दिया और उससे कोई जवाब न बन पड़ा।

अल्लाह ने इस बारे में मूसा (अलै.) को जो हिदायत दी थी वह यह थी कि फ़िरऔन तक अपनी दावत पहुँचाने के लिए बातचीत करने का नर्म लहजा अपनाएँ।

> "और उससे कह कि क्या तू इसके लिए तैयार है कि पाकीज़गी इख़्तियार करे और मैं तेरे पालनहार की तरफ़ रहनुमाई करूँ, तो (उसका) ख़ौफ़ तेरे अन्दर पैदा हो।"
>
> (क़ुरआन, 79:18-19)

फ़िरऔन के साथ मूसा (अलै.) की बातचीत का क़ुरआन पाक में ज़िक्र है, जो इनसान भी उससे आगाह होगा वह यह महसूस किए बग़ैर नहीं रह सकता कि मूसा (अलै.) ने परवरदिगार की हिदायतों को दिल और दिमाग़ में रचा-बसा लिया था और फ़िरऔन की सरकश, घमण्ड, तोहमत घड़ने और धमकियों के बावजूद बड़ी समझदारी और बारीकी से इन हिदायतों पर अमल किया। सूरा अशशूरा को पढ़ने से यह हक़ीक़त खुलकर सामने आ जाती है।

जिस शख़्स ने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की ज़िन्दगी और दावती पहलुओं को पढ़ा है, उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि नबी (सल्ल.) की दावती ज़िंदगी में सख़्ती और शिद्दतपसंदी के मुकाबले में नर्मी, दोस्ती, रहमत और कोमलता का पहलू हावी और ग़ालिब था— और ऐसा क्यों न होता जबकि अल्लाह ने आप (सल्ल.) की ख़ूबी बयान करते हुए कहा है—

> "देखो, तुम लोगों के पास एक रसूल आया है जो ख़ुद तुम्हीं में से है, तुम्हारा घाटे में पड़ना उस पर शाक़ और नागवार है, तुम्हारी सफलता का वह लालची है, इस्लाम को क़बूल करनेवालों का वह हमदर्द और ग़मख़्वार है।" (क़ुरआन, 9 : 128)

इसी तरह सहाबा किराम (रज़ि॰) से आप नबी (सल्ल॰) के तांल्लुक़ात की तस्वीर कुछ इस तरह खींची गई है—

> "(ऐ पैग़म्बर!) यह अल्लाह की बड़ी रहमत है कि तुम इन लोगों के लिए बहुत नर्म मिज़ाज हो, वरना अगर कहीं तुम सख़्त मिज़ाज और पत्थर-दिल होते तो ये सब तुम्हारे आसपास से छट जाते।" (क़ुरआन, 3 : 159)

कुछ यहूदियों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को सलाम करते हुए ज़बान को मरोड़कर "अस्सलामु अलैकुम" की जगह 'अस्साम अलैकुम' कहा। इस तरह मौत की दुआ करके अपने छिपे हुए दुश्मनी को ज़ाहिर किया। हज़रत आइशा (रज़ि॰) इस पर बहुत ज़्यादा नाराज़ हुईं और सख़्त जवाब दिया। लेकिन नबी (सल्ल॰) ने सिर्फ़ "व अलैकुम" (और तुम पर भी) कहने को काफ़ी समझा। फिर आप (सल्ल॰) ने हज़रत आईशा (रज़ि॰) से कहा—

'अल्लाह हर मामले में नर्मी पसन्द करता है। दीन और दुनिया की तमाम बातों में क़ौल व अमल (कथनी व करनी) में अल्लाह को नर्मी पसन्द हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इसी तरह हज़रत आइशा (रज़ि॰) से मुस्लिम की एक और रिवायत में आया है कि अल्लाह तआला नर्म-मिज़ाज है और नर्मी को पसन्द करता है और नर्मी पर जो अच्छा बदला देता है वह सख़्ती पर या किसी और चीज़ पर नहीं देता।

हदीस की मशहूर किताब मुस्लिम ही में हज़रत आइशा (रज़ि॰) से एक और रिवायत आती है कि जिस चीज़ में नर्मी होती है, उसे ज़ीनत (ख़ूबसूरती) मिल जाती है और जिस चीज़ से नर्मी ख़त्म हो जाती है उसमें बिगाड़ आ जाता है। इस हदीस में जो कुशादगी है, उसने हर चीज़ को अपने दायरे में ले लिया है।

हज़रत ज़रीर बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि.) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को यह कहते हुए सुना है कि जो दोस्ती और नर्मी से महरूम होता है वह सभी भलाइयों से महरूम होता है।(हदीस : मुस्लिम)

इससे बड़ी और सख़्त सज़ा क्या होगी कि इनसान सारी भलाइयों से महरूम होकर रह जाए।

मेरा ख़याल है कि ऊपर क़ुरआन और हदीस की पेश की गई जितनी वाज़ेह और साफ़ बातें हैं वे उन बच्चों को मुत्मइन कर देने के लिए काफ़ी होंगी जिन्होंने उग्रता, सख़्ती और शिद्दतपसंदी को अपनी पहचान बना रखी है। मुझे उम्मीद है कि यह शिद्दतपसंदी की राह छोड़कर हिकमत और अच्छे तरीक़े से बातचीत का रास्ता अपना लेंगे।

दावत और बातचीत के आदाब

अब मैं दावत और बातचीत के बारे में कुछ ज़रूरी बातों पर ज़ोर देना चाहता हूँ। इस सिलसिले में इन बातों की बड़ी अहमियत है –.

1. माँ-बाप और रिश्तेदारों के हक़ की रिआयत ज़रूरी है। इस बुनियाद पर कि ये लोग गुनहगार, बिद्अती या सच्चाई से फिरे हुए हैं। माँ-बाप से सख़्ती और इस वजह से अक्खड़पन के साथ पेश नहीं आना चाहिए और न भाई-बहनों से सख़्ती का बरताव करना चाहिए इस वजह से इन लोगों का यह हक़ है कि उनके साथ नर्मी से बातचीत की जाए और ख़ास तौर से माँ-बाप का यह हक़ गुनहगार या बेदीन होने से ख़त्म नहीं हो जाता।

माँ-बाप के हक़ के बारे में अल्लाह का हुक्म है–

> "लेकिन अगर वे तुझ पर दबाव डालें कि मेरे साथ तू किसी ऐसे को साझीदार (शरीक़) ठहरा ले जिसे तू नहीं जानता तो उनकी बात हरगिज़ न मान (लेकिन) दुनिया में उनके साथ अच्छा बरताव करता रह।" (क़ुरआन, 31:15)

यहाँ शिर्क से बड़ा कोई गुनाह नहीं है, सिवाए इसके कि मोमिन को मुशरिक (शिर्क करने वाला) बनाने की कोशिश की जाए और जब यह गुनाह माँ-बाप की इताअत से पैदा हो तो अल्लाह ने उनकी इस इताअत से रोक दिया है और हुक्म दिया है कि उनकी यह ग़लत बात न मानो अलबत्ता उनके साथ भले तरीक़े से रहो।

हज़रत इबराहीम (अलैह.) ने अपने बाप के साथ जो दावती बातचीत की है और जिसका ज़िक्र सूरा मरियम में आया है, जो शख़्स उसको पढ़ेगा वह अच्छी तरह जान लेगा कि औलाद को माँ-बाप के साथ 'दीन' की तरफ़ बुलाने में बातचीत करते समय किन आदाब और शिष्टाचार का ख़याल रखना चाहिए भले ही ये माँ-बाप ग़ैर-मुस्लिम ही क्यों न हों।

फिर ये माँ-बाप अगर मुसलमान हों तो गुनहगार होने और उनके मुख़ालिफ़ होने के बावजूद उनका माँ-बाप होने का हक़ तो है ही। इस्लाम ने जो हक़ उन्हें दिया है वह भी बाक़ी रहता है।

2. दूसरी बात यह कि बड़ी उम्र होने के हक़ का भी ख़याल रखना चाहिए। उम्र और साल के इस फ़र्क़ को ख़त्म नहीं करना चाहिए। छोटों और बड़ों से बातचीत करने का एक जैसा तरीक़ा नहीं अपनाना चाहिए, और न बड़ों के साथ वह मामला करना चाहिए जो नौजवानों के साथ किया जाता है। इसके बावजूद कि इस्लाम तमाम लोगों को बराबर ठहराता है, लेकिन बराबरी का यह ग़लत मतलब है कि किसी के ख़ास हक़ का ख़याल न रखा जाए। इस्लाम आम हक़ों और इनसान की इज़्ज़त और वक़ार के सिलसिले में लोगों के बीच बराबरी का एलान करता है और यह इस बात के ख़िलाफ़ नहीं कि ख़ास हक़ मिसाल के तौर पर रिश्तेदारों के हक़, शौहर-बीवी के हक़, पड़ोसी के हक़ और रहनुमाओं और ज़िम्मेदारों के हुक़ूक़ की रिआयत की जाए।

ये ज़िन्दगी के आदाब हैं। कि छोटा बड़े का आदर करे और बड़ा छोटे के साथ प्यार और मुहब्बत के साथ पेश आए। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का आदेश है—

> "वह शख़्स हम में से नहीं जो हमारे छोटों पर रहम नहीं करता, हमारे बड़ों की इज़्ज़त नहीं करता और हमारे आलिमों का हक़ नहीं पहचानता।" (हदीस : अल-तबरानी, अल-हाकिम)

इमाम अहमद (रह.) ने उबादा (रज़ि.) बिन-सामित से यही हदीस रिवायत की है लेकिन उसमें शब्द "लै-स मिन्ना" (हम में से नहीं) की जगह "लै-स-मिन् उम्मती" यानी वह मेरी उम्मत में से नहीं है। इस्तेमाल हुआ है।

"वह हम में से नहीं", का मतलब बयान करने वालों ने इस फ़िकरे (वाक्यांश) का जो भी मतलब बयान किया है, लेकिन उन मतलबों के बावजूद इस बात से और सख़्त क्या चीज़ हो सकती है कि नबी (सल्ल.) ने ऐसे लोगों से अपनी लाताल्लुक़ी ज़ाहिर की है?

एक और हदीस में आया है कि—

> "सफ़ेद दाढ़ी वाले मुस्लिम का आदर करना अल्लाह के आदर और सम्मान में से है।" (अबू-दाऊद)

3. तीसरी बात यह है कि अपने से आगे बढ़े हुए लोगों की रिआयत की जाए जो लोग इस्लाम की दावत और उसके प्रचार प्रसार में और लोगों को भलाई की शिक्षा देने में आगे बढ़े हुए हैं और जिन लोगों ने इस्लाम की नुसरत-व-मदद में हर नर्म-गर्म को बर्दाश्त किया है, दीन की भरपूर मदद की है तो उनकी इस फ़ज़ीलत (बढ़ाई) का इनकार नहीं करना चाहिए और न उनके पिछले कारनामों पर मिट्टी डालनी चाहिए और न उन्हें इस बुनियाद पर लानत-मलामत का निशाना बनाना चाहिए कि उनमें चुस्ती के बाद सुस्ती आ गई है या क़ुव्वत के बाद कमज़ोरी पैदा हो गई है या दीन पर जमाव के बाद कोताही करने लगे हैं, इसलिए

कि उनके पास भलाई का सरमाया है और जिद्दोजुहद के मैदान में उन्हें जो बड़ाई मिली हुई है, ये सारी चीज़ें उनके हक़ में सिफ़ारिश करती हैं कि उनके पिछले कारनामों का इनकार न किया जाए।

यह बात मैं अपने मन से गढ़कर नहीं कह रहा हूँ, बल्कि यह वह बात है जो हज़रत हातिब (रज़ि॰) बिन-अबी बल्तआ के मामले में पैग़म्बर (सल्ल॰) से साबित है जबकि उन सहाबी से एक भूल हो गई थी और यह भूल भी ख़यानत जैसी थी। उन्होंने मक्का के क़ुरैशी दुश्मनों के नाम एक ख़त लिखा था। नबी (सल्ल॰) ने मक्का-विजय के लिए ज़ो तैयारी की थी उस ख़त में मक्कावालों को इसकी सूचना दी गई थी, जबकि नबी (सल्ल॰) की यह पूरी-पूरी कोशिश थी कि इस तैयारी की कोई ख़बर बाहर न जाने पाए। इसी लिए जब यह ख़त पकड़ा गया तो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से कहा– "ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे इजाज़त दीजिए कि मैं इसकी गर्दन उड़ा दूँ, यह तो मुनाफ़िक़ हो गया है। लेकिन निहायत नर्म मिजाज़ नबी (सल्ल॰) की तरफ़ से जो जवाब मिला, वह यह था–

"उमर, तुम्हें, क्या ख़बर! अल्लाह बद्रवालों के हालात को अच्छी तरह जानता है। तभी तो उसने कहा– जो चाहो करो, मैंने तुम लोगों को माफ़ कर दिया।"

बेशक, हातिब-बिन-अबी-बल्तआ के पिछले कारनामों ने और बद्र की जंग में उनके शामिल होने से नबी (सल्ल.) के दरबार में उनके लिए वह मक़ाम दिला दिया था कि नबी (सल्ल.) ने उनके उज्र (वजह) को क़बूल कर लिया और अपने साथियों से उनके बारे में वही बात कही जो बद्र वालों के बारे में आप कहते थे।

आम लोगों में घुल-मिलकर रहो

नौजवानों के लिए मेरी पाँचवीं नसीहत यह है कि वे आदर्शवाद और रबाबों के आसमान से उतरकर हक़ीक़त की ज़मीन पर आएँ। लोगों के साथ मिल-जुलकर रहें। किसान, मज़दूर, कारिगर, मेहनत मज़दूरी करने वाले और विभिन्न मैदानों में अपने मसलो के लिए जिद्दोजुहद करने वाले लोगों से मिलें। शहर की घनी बस्तियों, मुहल्लों, गलियों और गाँवों में जाएँ। यहीं उन्हें अच्छी फ़ितरत और अच्छे दिल के इनसान मिलेंगे। यहीं उनकी मेहनत से निढाल जिस्मों से मुलाक़ात होगी।

नौजवानों के लिए मेरी यह नसीहत है कि वे उन लोगों के पास जाएँ, उनमें अनपढ़ लोगों को पढ़ाने-लिखाने में हाथ बटाएँ, ताकि वे पढ़ने लगें, मरीज़ों के इलाज में हाथ बटाएँ ताकि वे सेहतयाब हो सकें, ठोकर खाकर गिरनेवालों को सहारा दें ताकि वे खड़े हो जाएँ, बेरोज़गार लोगों के लिए मदद देनेवाले कामों में हिस्सा लें, ताकि उनकी मुहताजी दूर हो जाए। पिछड़े हुए लोगों की ज़ेहनी तर्बियत में हिस्सा लें ताकि ये लोग आगे बढ़ सकें। पाप और गुनाह के काम करने वालों को समझाएँ-बुझाएँ, ताकि वे लोग गुनाहों और बुरे कामों से तौबा कर लें, भटके हुए लोगों का हाथ पकड़ कर सहारा दें कि वे सीधी राह पर आ जाएँ। कपटाचारियों और धोखे बाज़ों की पोल खोलें कि वे समाज को मुँह न दिखाएँ। रिश्वतखोरों और भ्रष्टाचारियों का पीछा करें, यहाँ तक कि वे रिश्वतख़ोरी और भ्रष्टाचार से बाज़ आ जाएँ। मज़लूमों को इनसाफ़ दिलाएँ कि उनके अन्दर फिर से ज़िन्दगी की ख़ुशी पैदा हो।

नाख़्वान्दगी (निरक्षरता) को दूर करने के लिए, ज़कात को जमा करने और बाँटने के लिए, लोगों के अन्दर सुलह-सफ़ाई के लिए, बीमारियों के ख़िलाफ़ जंग के लिए, सिगरेट पीने और नशीली चीज़ों से

लोगों को बचाने के लिए, बुरी आदतों को मिटाने और अच्छी आदतों को फैलाने के लिए नौजवानों को कमेटियाँ बनाना चाहिए।

यहाँ कितने ही काम करने के मैदान हैं जो नौजवानों के जिद्दोजुहद की, नौजवानों के मज़बूत इरादों की, नौजवानों के जोशो-ख़रोश की राह देख रहे हैं।

नौजवानो! समाज के लोगों को छोड़ कर सिर्फ़ अपने आपको अपनी तवज्जोह का मर्कज़ (केन्द्र) न बनाओ। ये आपके बुज़ुर्ग हैं, माँ-बाप हैं, भाई-बहन और रिश्तेदार हैं। समाज के लोगों के पास आओ, उन्हीं के साथ मिल-जुलकर रहो। उनके ग़म को अपना ग़म समझो, उनके दुख-दर्द को बाटो ग़मग़ीनों का सहारा बनो, यतीमों के आसुओं को पोंछो, मिस्कीनों के चेहरों पर मुस्कुराहट लाने की कोशिश करो, थके-मांदों के बोझों को हल्का करो, परेशान हालों की मदद करो, टूटे दिलों को जोड़ने की कोशिश करो, ग़मगीन दिलों के ज़ख़्मों का इलाज करो, चाहे अपने अमल से या अच्छी बात कहकर या अपनी सच्ची मुस्कुराहट से।

समाज की ख़िदमत के लिए कमर कसना उसे मदद देना, ख़ासकर समाज के कमज़ोर तबक़ों की मदद करना ऊँचे दर्जे की इबादत है। लेकिन आज के दौर में बहुत-से मुसलमान इसे अच्छे ढंग से अंजाम नहीं देते, इसके बावजूद कि इस्लाम की शिक्षाएँ भलाई के कामों को करने की तरफ़ बुलाती हैं, ख़ैर के कामों को नुमायाँ शक्ल देने का हुक्म देती हैं और एक मुसलमान के लिए इसे हर रोज़ का फ़रीज़ा (कर्तव्य) ठहराती हैं।

मैंने अपनी किताब 'अल-इबादत फ़िल इस्लाम'' (इस्लाम में इबादत) में यह बात बयान की है कि इस्लाम में इबादत का मैदान बहुत कुशादा है। इस्लाम ने इसके दायरे को फैला दिया है। इसने अपने दामन में उन बहुत-से कामों को समेट लिया है जिनके बारे में लोग

सोच भी नहीं सकते थे कि दीन उन को इबादत और अल्लाह की क़ुर्बत हासिल करने का ज़रीआ बना देगा।

फ़ायदा पहुँचानेवाले हर इज्तिमाई (सामाजिक) काम को इस्लाम बेहतरीन इबादतों में शुमार करता है, जबकि इसका करने वाला भलाई का चाहने वाला हो, तारीफ़ का ख़ाहिशमन्द न हो और लोगों के बीच झूठी शोहरत न चाहता हो। हर काम जिससे कोई इनसान किसी ग़मज़दा के आंसुओं को पोछता है, किसी दुखिया के दुख को हलका करता है, किसी मुसीबत में गिरफ़तार के ज़ख़्म पर फाया रखता है, किसी महरूम के लिए रोज़ी मुहैया करता है कि वह मौत के मुँह में जाने से बच सके, किसी पीड़ित को सहारा देता है, ठोकर खाकर गिरे हुए किसी इनसान को उठाता है, क़र्ज़ के बोझ के नीचे दबे हुए किसी इनसान का क़र्ज़ अदा करता है, शरीफ़ और खुद्दार ग़रीब को सहारा देता है, भटके हुए को राह दिखाता है, अनपढ़ और बेपढ़े लोगों को तालीम के ज़ेवर से सजाता है, किसी परदेसी को ठिकाना मुहैया कराता है, लोगों से बुराइयों को दूर करता है, रास्ते से तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ों को हटा देता है, किसी ज़िन्दा को कोई फ़ायदा पहुँचाता है, तो ये सारी चीज़ें, अगर नेक नीयती के साथ हों तो इबादत और अल्लाह की क़ुर्बत हासिल करने का ज़रीआ हैं। इसी तरह के बहुत-से काम हैं, जिन्हें इस्लाम ने इबादत और ईमान के शोबों (विभागों) में शामिल किया है और अल्लाह के निकट इन पर इनाम वाजिब हो जाता है।

इस बारे में जब हम नबी (सल्ल.) की हदीसों को पढ़ते हैं तो देखते हैं कि नबी (सल्ल.) ने इनसान पर इनसान होने की हैसियत से आम इबादतों को फ़र्ज़ ठहराने पर बस नहीं किया है, बल्कि उससे कुछ और की भी माँग की हैं। इसकी हर अलामत या इसके हर जोड़ पर इबादत को ज़रूरी ठहरा दिया है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया–

"हर दिन जब सूरज उगता होता है, तो इनसान की उँगलियों के हर पोरे पर सद्क़ा लाज़िम होता है। दो इनसानों के बीच इन्साफ़ करना सद्क़ा है। जब कोई शख़्स किसी शख़्स को सवार होने में मदद देता है, उसके सामान को लाद देता है या उतार देता है, तो यह भी सद्क़ा है, किसी से अच्छी बात कहना भी सद्क़ा है, हर क़दम जो नमाज़ के लिए उठता है वह भी सद्क़ा है, तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ को रास्ते से हटा देना भी सद्क़ा है। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.) ने रिवायत की है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया–

"हर रोज़ इनसान के हर जोड़ या अलामत पर इबादत है।" आपकी यह बात सुनकर लोगों में से एक आदमी ने कहा, "यह बात जो आपने बताई है, बहुत ही मुश्किल बात है।" आपने कहा, "भलाई का हुक्म देना और बुराइयों से रोकना इबादत है। किसी कमज़ोर का बोझ उठा लेना भी इबादत है। रास्ते से गंदगी का दूर करना भी इबादत है। हर क़दम जो नमाज़ के लिए उठाते हो वह भी इबादत है। (हदीस : इब्ने ख़ुज़ैमा)

ऐसी ही एक रिवायत और है जो हज़रत अबू-हुरैरा ने नबी (सल्ल.) से बयान की है कि आप (सल्ल.) ने फ़रमाया–

"इनसान के अन्दर 360 जोड़ हैं। इनसान के लिए ज़रूरी है कि हर जोड़ की तरफ़ से सद्क़ा (दान-पुण्य) करे। लोगों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, इसकी ताक़त कौन रखता है। लोगों का ख़याल था कि सद्क़े से मुराद रुपए-पैसों के सद्क़े से है। आपने फ़रमाया, "मस्जिद में कोई गन्दगी नज़र आए तो

> उस पर मिट्टी डाल दो, यह भी सद्क़ा है और रास्ते से कोई तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ को हटा देते हो तो यह भी सद्क़ा है।" (हदीस : अहमद, अबू दाऊद, रब्ने ख़ुज़ैमा, इब्ने हुब्बान)

इनके अलावा और भी हदीसें हैं जिनसे मालूम होता है कि एक सच्चे मुसलमान का अपने भाई से मुस्कुराते हुए और ख़ुश मिज़ाजी के साथ मिलना भी सद्क़ा है, और बेहरे को कोशिश करके बात सुना देना, अंधे को राह पर डाल देना, भटके हुए को रास्ता बता देना, ज़रूरतमंद की ज़रूरतें पूरी कर देना, परेशानहालों की परेशानी दूर करने के लिए भरपूर कोशिश करना, कमज़ोरों के बोझ को उठा देना और इसी तरह के अच्छे कामों को रसूल (सल्ल.) ने इबादत और सद्क़ा कहा है।

इसी तरह एक मुसलमान अपने समाज में ऐसा चश्मा (स्रोत) बनकर रहता है, जिससे भलाई और दयालुतता के स्रोत उबलते हैं, नफ़ा और बरक़त की धाराएँ प्रवाहित होती हैं, वह भलाई के कामों को अंजाम देता है, लोगों को भलाई की ओर बुलाता है, वह नेकी को फैलाता है, नेकी की तरफ़ रहनुमाई करता है, वह भलाई के लिए कुंजी बन जाता है, बुराई के स्रोतो के लिए डाट बन जाता है, और इस तरह इब्ने माज़ा की यह हदीस उसपर सही साबित होती है।

> "मुबारक बाद है उस बन्दे के लिए, जिसे अल्लाह ने भलाई और नेकी की कुंजी और बुराई के लिए डाट बना दिया।"

कुछ जोशीले लोग कहते हैं, कि जो लोग इन सामाजिक कामों में मशग़ूल होंगे, वे इस्लाम के पैग़ाम को फैलाने का काम नहीं कर सकेंगे। और न इस पहलू से लोगों की ज़ेहनी तर्बियत कर सकेंगे। जबकि ये काम निहायत अहम और जरूरी हैं।

मैं उन नौजवानों से कहता हूँ कि ये सामाजिक काम दावत ही की एक शक्ल और तरीक़ा है। इससे लोगों तक दावत उनके माहौल में पहुँचाई जाती है। दावत का यह काम अमल से जुड़ा हुआ है। दावत

सिर्फ़ बातचीत का नाम नहीं है कि उसे ज़बान और लिखने से पूरा किया जाए। बल्कि लोगों के मसलों और समस्याओं पर भी ध्यान देना पड़ता है। लोगों की मुश्किलें हल हो जाती हैं, तो यह हल उन्हें इस्लामी फ़िक्र (विचार-धारा) से क़रीब कर देता हैं। इमाम हसनुल बन्ना (रह.) इस बात को ख़ूब अच्छी तरह समझते थे, इसी लिए उन्होंने हर मैदान में भलाई और सामाजिक सेवा के विभाग भी खोले थे।

इसके अलावा मुसलमान के जिम्मे यह भी काम है कि लोगों के लिए नेकी और भलाई के काम करे। साथ ही साथ उसे अल्लाह के सामने झुकने और सजदा करने का हुक्म भी दिया गया है।

क़ुरआन कहता है—

> "ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! रुकूअ़ और सजदा करो, अपने पालनहार की बन्दगी करो और नेक काम करो। इसी से उम्मीद की जा सकती है कि तुम को कामयाबी नसीब हो, अल्लाह की राह में जिद्दो जुहद करो, जैसा कि जिद्दो जुहद करने का हक़ है। उसने तुम्हें अपने काम के लिए चुन लिया।
>
> (क़ुरआन,22:77,78)

यही मुसलमान की ज़िन्दगी का पैग़ाम है। इसके तीन हिस्से हैं। एक हिस्से में उसके अल्लाह से ताल्लुक़ की हदबंदी की गई है, और यह इबादत से ज़ाहिर होती है। दूसरे हिस्से में समाज से उसके ताल्लुक़ की हदबंदी की गई है और यह भलाई के कामों से ज़ाहिर होती है। और तीसरे भाग में बुराई की ताकतों से उसका ताल्लुक़ किस तरह का है यह बताया गया है और यह बात अल्लाह की राह में जिद्दो जुहद से नुमाआ और उजागर होती है। लिहाज़ा ऐसी हालत में जो आदमी समाज में भलाई का काम कर रहा है वह वही काम कर रहा है जो अल्लाह ने उसके लिए ज़रूरी ठहराया है। वह अल्लाह के यहाँ फल पाने के क़ाबिल होगा और लोगों के बीच तारीफ़ के क़ाबिल ठहरेगा।

कुछ जोशीले नौजवान यह भी कहते हैं कि इस्लाम की तबलीग़ करने वालों को अपनी तमाम कोशिशें ऐसी इस्लामी हुकूमत को क़ायम करने पर मर्कूज़ (केन्द्रित) कर देनी चाहिए जो अल्लाह के उतारे हुए हुक्मों के मुताबिक फ़ैसला करे और पूरी ज़िन्दगी को इस्लामी बुनियादों पर क़ायम करे। देश में इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी लागू करे, देश से बाहर भी इस्लाम का प्रचार करे और जब ऐसी हुकूमत क़ायम हो जाएगी तो वह समाज की उन तमाम ज़रूरतों और माँगों को पूरा करेगी, जिनका आपने ज़िक्र किया है। वह अनपढ़ लोगों के पढ़ने-लिखने का इन्तिज़ाम करेगी। बेरोज़गार लोगों के लिए रोज़गार मुहैया करेगी। असहाय और मुहताजों की देखभाल करेगी, मरीज़ों के लिए इलाज और दवाइयाँ मुहैया करेगी, मज़लूम को इनसाफ़ दिलाएगी, कमज़ोरों के लिए ताक़त बनेगी लिहाज़ा हमारे लिए यह ज़रूरी है कि हम ऐसी हुकूमत क़ायम करने के लिए कोशिश करें और अपने वक़्त को जुज़्वी पैवन्दकारी और सतही सुधारों की कोशिशों में बरबाद न करें। ये कोशिशें मरीज़ के लिए नींद की गोली की हैसियत रखती हैं। ये उन दवाओं की तरह नहीं हैं जो मर्ज़ को जड़ से उखाड़ फ़ेंकें।

उन युवकों से मेरा यह कहना है कि बेशक ऐसी इस्लामी हुकूमत क़ायम करना जो अल्लाह के क़ानून और शरीअत के मुताबिक़ फ़ैसला करे, इस्लाम की बुनियाद पर तमाम मुसलमानों को इकट्ठा कर दे, उन्हें इस्लाम के झण्डे के नीचे जमा कर दे, तमाम मुसलमानों की ज़िम्मेदारी है. हम सबको इसके लिए कोशिश करनी चाहिए। इस्लाम की तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) करनेवालों के लिए भी ज़रूरी है कि इस मक़सद तक पहुँचने के लिए सबसे बेहतर रास्ता और काम करने के बेहतरीन तरीक़ों को अपनाकर पूरी सकत भर कोशिश करें ताकि बिखरी हुई कोशिशें एक जगह जमा हो जाएँ। शक-संदेह में पड़े हुए दिलों के अन्दर यक़ीन की रौशनी पैदा हो जाए, राह में पाई जानेवाली ज़्यादातर रुकावटें दूर हो जाएँ। और इस मक़सद को हासिल करने वाला कारवाँ

आगे बढ़ सके और यह भी ज़रूरी है कि इन मुबल्लिग़ीन (प्रचारकों) को बेहतर राह और काम करने का बेहतर तरीक़ा अपनाकर मक़ामी और आलमी (विश्वव्यापी) सतह पर लोगों में आम सहमति पैदा करनी चाहिए, ताकि लोग इस फ़िक्र और इस्लामी हुकूमत के नज़रिए को क़बूल करने के लिए तैयार हो जाएँ।

लेकिन ये सारी बातें एक लम्बा वक़्त चाहती हैं, भरपूर सब्र चाहती है, यहाँ तक कि असबाब और साधन मुहैया हो जाएँ, रुकावटें दूर हो जाएँ, शर्तें पूरी हो जाएँ और नतीजा समाने आ जाएँ।

लेकिन जब तक यह आरज़ू पूरी नहीं होती, लोगों को चाहिए कि वे जो कुछ भलाई का काम कर सकते हैं, करते रहें। अपनों की और अपने इस समाज की ख़िदमत में लगे रहें, जिसके बीच वे अपनी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। अल्लाह हर शख़्स को उसकी सकत और ताक़त के मुताबिक़ ही उस पर ज़िम्मेदारी डालता है। इन्हीं कामों के ज़रीए हरावल दस्ते की भी तर्बियत होगी। इसी अमल की भट्टी में वह पुख़्ता होगा और इसी में उसकी परीक्षा भी हो जाएगी कि वह समाज पर असर डालने और उसकी पेशवाई करने की कितनी सलाहियत रखता है।

एक मुसलमान के लिए यह कोई अच्छी बात नहीं है कि उसकी निगाहों के सामने एक मरीज़ पड़ा हुआ हो, किसी सरकारी या ख़ैराती अस्पताल से वह उसके इलाज की व्यवस्था भी कर सकता हो, लेकिन इस बारे में वह दौड़-धूप करने से इनकार कर दे और कहे कि इन्तिज़ार करो। यहाँ तक कि जब इस्लामी हुकूमत क़ायम हो जाएगी तो वह हुकूमत मरीज़ों के इलाज का काम सँभाल लेगी।

किसी मुसलमान के लिए यह बात अच्छी नहीं है कि वह अपनी निगाहों के सामने ग़रीबों, बेवाओं और बेसहारा लोगों को देखता रहे। जबकि वह इस बात की ताक़त भी रखता हो कि वह ज़कात फ़ण्ड क़ायम करके उनकी मदद कर सकता हो। (इस फ़ण्ड में अमीरों से जो

रक़म ली जाती है, वह ग़रीबों में तक़सीम कर दी जाती है) लेकिन इस काम को पूरा करने के लिए तैयार न हो और कहे कि जब इस्लामी हुकूमत क़ायम हो जाएगी तो सामाजिक देखभाल की बुनियाद पर वह इस ख़िदमत को पूरा करेंगी।

किसी मुसलमान के लिए यह मुनासिब नहीं है कि उसके चारों तरफ़ लोग लड़-झगड़ रहे हों और वह तमाशा देखनेवाला बना रहे। दुश्मनी की आग हर बुरे-भले को जलाकर ख़ाक करती रहे और वह इस इन्तिज़ार में रहे कि जब इस्लामी हुकूमत क़ायम होगी तो लोगों में न्याय और इनसाफ़ की बुनियाद पर सुलह-सफ़ाई करा देगी और ऐसी हालत में जो गरोह सरकशी पर उतारू होगा, उससे जंग करेगी, यहाँ तक कि वह अल्लाह के हर हुक्म को क़बूल करेगा।

मुसलमान के लिए जो चीज़ मुनासिब है वह यह है कि अपनी सलाहियत के मुताबिक बुराई का सामना करता रहे, भलाई के कामों को करता रहे। राई के बराबर भी भलाई के काम कर सकता हो तो हाथ बाँधकर खड़ा नहीं रहना चाहिए। अल्लाह तआला का हुक्म है—

> "लिहाज़ा जहाँ तक तुम्हारे बस में हो, अल्लाह से डरते रहो।" (क़ुरआन, 64:16)

मतलूब (अपेक्षित) इस्लामी हुकूमत की मिसाल मैंने ज़ैतून और खजूर के पेड़ से दी है। उनके पौधे जब किसी बाग़ में लगाए जाते हैं तो कुछ सालों के बाद ही उनसे फल मिलने की उम्मीद होती है, लेकिन जब तक खजूर और ज़ैतून के ये पेड़ फल न देने लगें, तब तक बाग़ का मालिक बेकार पड़ा रहता है? हरगिज़ नहीं, बल्कि वे उन सब्ज़ियों और ग़ल्लों की खेती करता है जिनसे जल्द पैदावार हासिल होती है। इस तरह वह अपनी ज़मीन को हरा-भरा रखता है, अपने समय को आबाद रखता है और अपने आपको ऐसे कामों में लगाए रखता है जिनका फ़ायदा उसे और उसके पड़ोसियों को मिलता रहता है। साथ ही

साथ वह ज़ैतून और खजूर के पौधों की भी देख-भाल करता रहता है। यहाँ तक कि कुछ ही सालों बाद उनके फल देने का समय भी आ जाता है।

लोगों के बारे में अच्छी सोच रखना

अपने नौजवान बच्चों के लिए मेरी छठी और आख़िरी नसीहत यह है कि आँखों से काला ऐनक उतारकर लोगों को देखें और यह लें कि अल्लाह के बन्दों में भलाई हैं, उनके बारे में अच्छे ख़याल को हमेशा आगे रखें और यह जान लें कि इनसान पैदाइशी मुजरिम और गुनहगार नहीं है। यही अस्ल और बुनियाद है और इसी तरह मुसलमानों के हालात और वाक़िआत को भलाई पर क़ियास करना चाहिए।

तीन बुनियादी बातें

इस पुर उम्मीद रवैए और सुलूक पर क़ायम रहने में जो बातें मददगार बनती हैं उनमें नीचे लिखी तीन बातें बड़ी अहम हैं—

1. लोगों के साथ मामलात करने में यह बात ज़ेहन में रहनी चाहिए कि ये लोग ज़मीन पर बसनेवाले इनसान हैं— परोंवाले फ़रिश्ते नहीं हैं और न वे नूर से बने हुए हैं, उन्हें तो सड़ी हुई मिट्टी से बनाया गया है। अब अगर ये ग़लती करते हैं तो सारे ही इनसान ख़ताकार हैं। अगर उनसे गुनाह होते हैं तो उनके बाप आदम से भी गुनाह हुआ था। क़ुरआन में है—

> "हमने इससे पहले आदम को हुक्म दिया था मगर वह भूल गया और हमने उसमें मज़बूत इरादा न पाया।"
>
> (क़ुरआन, 9:115)

फिर ऐसी हालत में यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि लोग ठोकर खाएँ और फिर उठ जाएँ, ग़लती करें और फिर सीधी राह पर आ जाएँ। हमारे लिए बस यह ज़रूरी है कि हम उन्हें अल्लाह की पकड़ से डराते रहें और उनके सामने अल्लाह की माफ़ी और मग़फ़िरत का दरवाज़ा खुला रखें– हक़ीक़त में आलिम वही है जो लोगों को अल्लाह की रहमतों से मायूस नहीं करता, अल्लाह की पकड़ से बेपरवाह नहीं बनाता, यहाँ हमारे लिए अल्लाह की यह बात काफ़ी है जो उसने अपने रसूल (सल्ल॰) से कही है। फ़रमाया–

> "(ऐ नबी) कह दो कि ऐ मेरे बन्दो! जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हो जाओ। यक़ीनन अल्लाह सारे गुनाहों को माफ़ कर देता है। वह तो बहुत बड़ा माफ़ करनेवाला और रहमतवाला है।"
>
> (क़ुरआन, 39:53)

देखो, मेरे बन्दो, कहकर अल्लाह किस तरह लोगों को अपने से मानूस (परिचित) कर रहा है। यह उसकी रहमत है कि अपनी पाक ज़ात से उन्हें निस्बत देकर अपने से क़रीब करता है और सारे गुनाहों के लिए माफ़ी का दरवाज़ा खोल देता है। ये गुनाह कितने ही बड़े और संगीन क्यों न हों लेकिन अल्लाह की बख़्शिश उनसे भी बढ़कर है।

2. हमें हुक्म दिया है कि हम लोगों के ज़ाहिर (बाह्य) पर फ़ैसला करें, दिल के भेदों की बात अल्लाह के सुपुर्द कर दें। इसलिए जो शख़्स यह गवाही देता है कि अल्लाह के सिवा और कोई ख़ुदा नहीं है और मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं, तो हम उसे उसकी ज़ाहिरी हालत को सामने रखकर उसे मुसलमान मानेंगे और उसके दिल के भेदों को भेदों के जाननेवाले ख़ुदा के हवाले कर देंगे।

यही वजह है कि नबी (सल्ल॰) उन मुनाफ़िक़ों के साथ जिनके अन्दरूनी निफ़ाक़ को आप (सल्ल॰) जानते थे, जो मामला करते थे

उनके ज़ाहिर के मुताबिक़ करते थे। नबी (सल्ल.) ने उन पर इस्लामी अहकाम (आदेशों) को जारी किया। हालाँकि ये लोग छिप-छिपकर आपके ख़िलाफ़ साज़िशें करते थे, चालें चलते थे। यही वजह है कि जब कुछ लोगों ने नबी (सल्ल.) के सामने यह राए पेश की कि इन मुनाफ़िक़ों के फ़ितने और धोखे से बचने के लिए उनको क़त्ल कर देना चाहिए, तो नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया–

"मुझे अन्देशा है, लोग कहेंगे कि मुहम्मद अपने साथियों को क़त्ल कर देते हैं।"

3. हर वह आदमी जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) पर ईमान रखता है, उसका अन्दरून नेकी और भलाई के जज़्बे से ख़ाली नहीं होता, चाहे उसका ज़ाहिर नाफ़रमानी और बड़े-बड़े गुनाहों में डूबा नज़र आए और यह नाफ़रमानी चाहे कितनी ही बड़ी हो, ईमान पर ख़राशें लगा रही हो, नुक़सान पहुँचा रही हो, लेकिन ईमान को जड़ से उखाड़ नहीं सकती, जब तक कि उनका करनेवाला अल्लाह के इख़्तिदार (सत्ता) को चैलेंज करके या उसकी हराम की हुई चीज़ों को हलाल (वैध) बनाकर, या उसके हुक्मों और रोकी गई बातों को बेकार समझकर वह उन को नहीं करता है।

इस बारे में अल्लाह के रसूल (सल्ल.) हमारे लिए बेहतरीन नमूना हैं। आप (सल्ल.) गुनाहगारों के लिए बड़े नर्म दिल थे। नाफ़रमानी के बावजूद उनके लिए नबी (सल्ल.) का दिल खुला रहता था। नबी (सल्ल.) उन पर उसी तरह प्यार की नज़र रखते थे जिस तरह एक डॉक्टर मरीज़ पर नज़र रखता है। इस तरह नहीं देखते थे जिस तरह पुलिस मुजरिम को देखती है।

एक क़ुरैशी नौजवान नबी (सल्ल.) के पास आया – नबी (सल्ल.) से ज़िना (व्यभिचार) की इजाज़त चाही। सहाबा (रज़ि.) उसकी इस जुरअत पर बिफर गए और चाहा कि उसे सज़ा दें, लेकिन आप

(सल्ल.) ने एक और ही तरीक़ा अपनाया। आप (सल्ल.) ने उसे क़रीब बुलाया और कहा– "क्या यह बात तुम अपनी माँ के लिए पसन्द करते हो।"

नौजवान ने कहा, "मेरी जान आप पर कुरबान हो, ख़ुदा की क़सम मैं माँ के लिए यह बात कभी नहीं पसन्द कर सकता।"

इसके बाद आप (सल्ल.) ने उससे यही सवाल उसकी बहन, फूफी और ख़ाला के बारे में किया। हर सवाल के बाद आप (सल्ल.) उससे पूछते, "क्या तुम इसे पसन्द करते हो" और वह हर बार यही जवाब देता कि मेरी जान आप पर क़ुरबान हो, ख़ुदा की क़सम मैं यह पसन्द नहीं करता। उसके इस जवाब पर आप (सल्ल.) ने फ़रमाया–

"और लोग भी इसे पसन्द नहीं करते।"

फिर आप (सल्ल.) ने अपना हाथ उस नौजवान के ऊपर रखा और दुआ की, "अल्लाह इसके गुनाहों को माफ़ कर दे, इसके दिल को पाक कर दे और इसकी शर्मगाह (गुप्तांग) को बुराइयों से महफ़ूज़ रख।"

इसके बाद उस नौजवान ने इस तरह की किसी बुराई की तरफ़ मुड़कर नहीं देखा। (हदीस : अहमद, तबरानी)

नबी (सल्ल.) ने उस नौजवान के साथ नर्मी का बर्ताव किया और उसके बारे में यह अच्छी सोच रखी कि उसके अन्दरून में नेकी का जज़्बा छिपा हुआ है और यह बुराई वक़्ती तौर पर उस पर छा गई है। चुनाँचे नबी (सल्ल.) उससे बात करते रहे यहाँ तक कि उसका ज़ेहन मुत्मइन हो गया, और यह बात उसके दिल में उतर गई कि ज़िना (व्यभिचार) बुरी चीज़ है। इसी के साथ उसे प्यारे नबी (सल्ल.) की दुआ भी हासिल हो गई।

कहा जाता है कि इसके बाद उस आदमी ने कभी भी उस गुनाह को नहीं किया। फिर तो वह इसी क़ाबिल था कि उसके साथ सख़्ती और शिद्दत के बजाए नर्मी और दोस्ती का सलूक़ किया जाए।

आपके सामने एक मिसाल और पेश की जा रही है। यह मिसाल उस ग़ामिदी औरत की है जो शादीशुदा और नेक होने के बावजूद ज़िना (व्यभिचार) कर गुज़री थी। हमल (गर्भ) ठहर जाने के बाद वह नबी (सल्ल॰) के पास आई, ताकि आप (सल्ल॰) उस पर हद जारी करके (यानी सज़ा देकर) उसे पाक-साफ़ कर दें। वह बराबर अपनी इस बात पर क़ायम रही यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उस पर हद जारी कर दी। जब ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) की ज़बान से उस औरत के लिए एक नामुनासिब लफ़्ज़ निकल गया तो नबी (सल्ल॰) ने उनसे कहा, "ख़ालिद क्या तुम उसे गाली दे रहे हो, ख़ुदा की क़सम, उसने तो ऐसी तौबा की है कि अगर मदीना के सत्तर घरों पर उसे बांट दिया जाए तो वह उनके लिए काफ़ी होगी, उन सबको अपने अन्दर समाहित कर लेगी, क्या उससे भी कोई अफ़ज़ल है, जिसने अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने के लिए अपनी जान दे दी।" (हदीस : मुस्लिम)

एक और मिसाल लीजिए। यह उन सहाबी (रज़ि॰) की मिसाल है, जो शराब पीने के रोग में पड़ गए थे, एक से ज़्यादा बार शराब पीने की हालत में उनको अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास लाया गया। हर बार उन पर मार पड़ती, सज़ा दी जाती, लेकिन शराब पीने की लत या शैतान हावी हो जाता– फिर शराब पी लेते। फिर नबी (सल्ल॰) के पास उनको लाया जाता, सज़ा दी जाती। इस तरह कई बार हुआ। यहाँ तक कि एक बार जब उन्हें शराब पीने की हालत में पकड़कर लाया गया तो किसी सहाबी (रज़ि॰) ने कहा– "क्या बात है, अल्लाह की इस पर लानत हो। बार-बार इसे लाया जाता है!"

इसके बावजूद भी कि वे पाप की जननी को अपनाए हुए थे, शराब के रसिया बने हुए थे, लेकिन जब नबी (सल्ल.) ने उन पर लानत भेजते हुए सुना तो ख़ामोश न रह सके और लानत करनेवाले से कहा— "उस पर लानत न भेजो। यह अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल.) से मुहब्बत रखता है।" एक और रिवायत में है कि आपने कहा कि अपने दीनी भाई के मुक़ाबले में शैतान के मददगार न बनो।"

अल्लाह हम को, आपको अपनी रहमतों का साया नसीब फ़रमाए। उस कुशादा और बड़े दिल को देखिए। उस बड़े दिल ने कैसे उस इनसान को अपनी मुहब्बतों के साए में ले लिया। उसके बारे में अच्छी सोच को ज़ाहिर किया, इसके बावजूद कि वह गुनाहों में लत-पत था। चुनाँचे नबी (सल्ल.) ने उसे इन लफ़्ज़ों में बयान किया—

"अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल.) से मुहब्बत रखता है।"

इसी लिए नबी (सल्ल.) ने उस पर लानत करने से मना किया, इसलिए कि उससे उसके और उसके ईमानवाले भाइयों के बीच खाई तैयार हो जाती। वह उन लोगों से दूर हो जाता और वे लोग उससे दूर हो जाते और फिर वह शैतान से क़रीब हो जाता। इसी हक़ीक़त की तरफ़ इशारा करते हुए नबी (सल्ल.) ने कहा— "अपने भाई के मुक़ाबिले में शैतान के मददगार न बनो", गुनाहों की वजह से भाईचारे का रिश्ता ख़त्म नहीं हो गया। हालाँकि यह गुनाह बहुत बड़ा था और बार-बार उसको दोहराया जा रहा था लेकिन इस्लामी रिश्ता उन्हें आपस में एक-दूसरे से जोड़े हुए था। ये आम मुसलमानों से जुड़े हुए थे और आम मुसलमान उनसे जुड़े हुए थे।

जो लोग आम मुसलमानों के बारे में बदगुमानी रखते हैं और गुनहगारों को अपने-अपने हिसाब से अलग-थलग कर देते हैं, उन्हें नबी (सल्ल.) की उस गहरी निगाह और मुहम्मद (सल्ल.) की तरबियत को समझना चाहिए। इससे उन लोगों को भी सबक़ हासिल

करना चाहिए, जो गुनाहों की वजह से लोगों को काफ़िर ठहराते रहते हैं। अगर ये लोग गौर-फ़िक्र से काम लें तो यह हक़ीक़त उनके सामने आ जाएगी कि जिनको वे काफ़िर ठहराते हैं वे दीन से फिरे हुए लोग नहीं हैं। वे दीन की हक़ीक़त को जानते नहीं हैं और ज़रूरी है कि उन्हें इससे आगाह किया जाए, या बुरी संगत और बुरे माहौल की वजह से वे गुनाहों में लत-पत हो गए हैं। ज़रूरी है कि उन्हें इससे बचाया जाए। वे दुनिया के काम-धंधों में फँसकर आख़िरत से ग़ाफ़िल हो गए हैं, ज़रूरी है कि उन्हें आख़िरत से आगाह किया जाए और आख़िरत की याद दिलाई जाए। नसीहत ईमानवाले को फ़ायदा पहुँचाती है।

वरना अगर लोगों पर सिर्फ़ लानत की जाए, तो अगरचे वे गुनाहगार और सीधी राह से भटके ही हुए क्यों न हों लेकिन यह लानत न उनका सुधार कर सकती है और न उन्हें भलाई और नेकी से क़रीब कर सकती है, बल्कि यह लानत उनको लोगों से और दूर कर देगी। इसी लिए इस नकारात्मक सोच से यह अधिक अच्छा है कि हम अपने गुनहगार भाई के पास जाएँ; उसे नेकी की तरफ़ बुलाएँ, दुआएँ दें और उसे इस तरह न छोड़ दें कि वह शैतान का शिकार बन जाए। एक बुद्धिजीवी का क़ौल (कथन) है कि— अंधकार पर लानत भेजने से यह अधिक अच्छा है कि एक चिराग़ रौशन कर दो। वह रास्ते को रौशन कर देगा।

यही वह नसीहत है जो मैं अपने जोशीले नौजवान मुस्लिम बच्चों को करना चाहता था। उनके लिए मेरे दिल में मुहब्बत का गहरा जज़्बा है, बड़ी शफ़क़त और मुहब्बत है और अब मैं अपनी बात ख़तीबुल-अंबिया हज़रत शुऐब (अलै.) की बात पर ख़त्म करना चाहता हूँ—

"मैं तो सुधार करना चाहता हूँ, जहाँ तक मेरा बस चले और यह जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसका दारोमदार अल्लाह की तौफ़ीक़ पर है। उसी पर मैंने भरोसा किया और हर मामले में उसी की तरफ़ मैं पलटता हूँ।"

(क़ुरआन, 11 : 88)

○ ○ ○